[2003] 3 उम.नि.प. 313

राजस्थान उच्च न्यायालय

बनाम

पी.पी. सिंह और एक अन्य

27 जनवरी, 2003

मुख्य न्यायमूर्ति बी. एन. खरे, न्यायमूर्ति एस.बी. सिन्हा और न्यायमूर्ति ए. आर. लक्ष्मणन्

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 235, 225 और 229 [सपठित राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1949 (1949 का 15) की धारा 46 तथा राजस्थान उच्च न्यायालय नियम, 1952 का नियम 15, 21(2) और 29] – न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति – योग्यता मानदंड – उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की शक्तियां – यदि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा गठित दो न्यायाधीशों की समिति की रिपोर्ट पर भले ही वह पूर्व मानदंड से भिन्न हो अंतिम विनिश्चय का बैठक में अनुमोदन न्यायालय के आधे से अधिक न्यायाधीशों द्वारा कर दिया जाता है तो ऐसा विनिश्चय पूर्ण न्यायालय का निर्णय माना जाएगा और यह विधिसम्मत और पूर्ण प्रभावी होगा ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 235, 225 और 229 [सपठित राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1949 (1949 का 15) की धारा 46 तथा राजस्थान उच्च न्यायालय नियम, 1952 का नियम 15] – न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति के लिए समिति का गठन – उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की शक्ति – उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति के लिए नियमों के निबंधनानुसार समिति गठित करने की शक्ति प्राप्त है और इसके लिए मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा प्रयोग की गई शक्ति पूर्णतया विधिमान्य है।

राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा के न्यायिक अधिकारियों की व्यक्तिगत योग्यता पर विचार करने के लिए पूर्ण न्यायालय ने राजस्थान उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की एक समिति गठित की। समिति की सिफारिशों पर कुछ न्यायिक अधिकारियों को चयन वेतनमान दिया गया । इन अपीलों के प्रथम प्रत्यर्थी ने उन्हें चयन वेतनमान न दिए जाने को प्रश्नगत करते हुए राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की। उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थियों की अपीलें मंजूर कीं और कतिपय निदेश दिए। राजस्थान उच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के इस आदेश को प्रश्नगत करते हुए अपील की। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – चयन श्रेणी की नियुक्ति के लिए योग्यता मानदंड अधिकथित करना भी उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के भीतर था । यह न केवल ऐसा मानदंड अधिकथित कर सकता है बल्कि समय-समय पर इसे संशोधित या उपान्तरित भी कर सकता है । उक्त प्रयोजन के लिए भी मुख्य न्यायमूर्ति समिति नियुक्त कर सकता है जिसकी सिफारिश पूर्ण न्यायालय के अनुमोदन के अध्यधीन होती है । नियमों का नियम 15 यह उल्लेख नहीं करता कि मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा उस निमित्त कोई कार्रवाई आरंभ करने के पूर्व सभी न्यायाधीशों से परामर्श किया जाना चाहिए । नियमों का नियम 15 इसमें विनिर्दिष्ट विषयों में अंतिम विनिश्चय न कि उसके लिए प्रक्रिया का आरंभ करना विहित करता है। यह दलील देना भी गलत है कि उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीशों से पहले परामर्श किया जाना अपेक्षित है । प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर विद्वान् काउंसेल की पुनः यह दलील सही नहीं है कि दो न्यायाधीशों की समिति द्वारा पूर्ण न्यायालय द्वारा अनुमोदित योग्यता मानदंडों से भिन्न योग्यता मानदंड निर्धारित करना न्यायोचित नहीं था । दो न्यायाधीशों की समिति ने उस बाबत कोई अंतिम विनिश्चय नहीं किया था । उसने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और वर्तमान नियमों तथा पूर्ण न्यायालय के पूर्व विनिश्चयों पर विचार करते हुए ऐसे कतिपय सिद्धांतों और मानदंडों को लागू किया जो सुस्पष्टतः पूर्ण न्यायालय के अनुमोदन के अध्यधीन थे। पूर्ण न्यायालय की बैठक आयोजित करने की प्रक्रिया से सुस्पष्टतः यह दर्शित होता है कि ऐसी बैठक, जिसमें नियम 29 के अधीन यथा अनुध्यात अपेक्षित गणपूर्ति थी, नियमों के अनुपालन में की गई बैठक की कोटि में आएगी । यद्यपि,

नियम 15 यह उपबंध करता है कि इसमें उपवर्णित विषयों में सभी न्यायाधीशों से परामर्श किया जाएगा जबकि नियम 18 उसके ढंग और रीति के बारे में उपबंध करता है । यदि ऐसा परामर्श परिचालन द्वारा किया जाना होता है तो निस्संदेह सभी न्यायाधीशों को सुसंगत दस्तावेज परिचालित किए जाने अपेक्षित होते हैं । तथापि, यदि ऐसा परामर्श पूर्ण न्यायालय के समक्ष विषय को रखकर किया जाता है तो उसके लिए सभी न्यायाधीशों को आमंत्रित किया जाता है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होगा कि यदि एक या अधिक न्यायाधीश पूर्ण न्यायालय में उपस्थित नहीं होता/होते हैं तो उसके द्वारा पारित संकल्प अविधिमान्य हो जाएगा । नियम 29 गणपूर्ति के संबंध में उपबंध करता है । न्यायालय के न्यायाधीशों की बैठक के मामले में गणपूर्ति तब पूरी होगी यदि इस बैठक में न्यायाधीशों की संख्या के आधे या अधिक न्यायाधीश भाग लेते हैं । इस प्रकार से सभी न्यायाधीशों से परामर्श का यह अर्थ नहीं है कि यदि कुछ न्यायाधीश पूर्ण न्यायालय की बैठक में स्वयं उपस्थित नहीं होते हैं तो सभी न्यायाधीशों से परामर्श पूर्ण नहीं होगा । अतः, यह स्वयंसिद्ध है कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति न केवल ऐसे विषयों पर न्यायाधीशों की समिति की राय अभिप्राप्त करने और कोई कार्यवाही आरंभ करने के लिए स्वतंत्र है और उसके लिए मात्र उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समक्ष समिति की राय के साथ-साथ ऐसे प्रस्तावों को रखना ही एक विधिक अपेक्षा है ताकि विषय को पूर्णतः विचार-विमर्श द्वारा सुलझाया जा सके । डाक एक बार पूर्ण न्यायालय न्यायाधीशों की समिति द्वारा की गई सिफारिशों को अनुमोदित कर देता है तो वे न्यायालय का विनिश्चय हो जाता है जिसे राज्यपाल के पास उस पर कार्रवाई करने के लिए भेजा जा सकता है । इस मामले का एक अन्य पहलू भी है जिस पर विचार किया जाना अपेक्षित है । आशय और तात्पर्य पूर्ण रूप से दो न्यायाधीशों की समिति की रिपोर्ट को पूर्ण न्यायालय नें अनुमोदित कर दिया है । जब एक बार रिपोर्ट अनुमोदित हो जाती है तो यह स्वतः पूर्ण न्यायालय का विनिश्चय हो जाती हैं । वर्तमान मामले में राज्यपाल ने भी उच्च न्यायालयों की सिफारिशों पर कार्रवाई कर दी है। इस मामले में के रिट याचियों प्रथम प्रत्यर्थियों ने न तो नियुक्त व्यक्तियों की नियुक्तियों को प्रश्नगत किया और न हीं उच्च न्यायालय को। इस प्रकार, किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं हो सकता है कि दो न्यायाधीशों की समिति की राय पर पूर्ण न्यायालय द्वारा आशय और तात्पर्य पूर्ण रूप से अनुमोदन कर दिया गया है । नियमों के नियम 2(2) के निबंधनानुसार पूर्ण न्यायालय के विनिश्चयों का भूतलक्षी प्रभाव और पूर्व प्रभावी प्रवर्तन परिवर्तन होगा । मामले का कोई भी दृष्टिकोण अपनाने पर, ऐसे मामले में भी जहां आरंभिक कार्रवाई अवैध हो, इसे उसके सक्षम निकाय द्वारा अनुसमर्थित किया जा सकता है । (पैरा 23, 24, 25, 26, 27, 28, 33, 37, 40 तथा 41)

"मुख्य न्यायमूर्ति" पद के अन्तर्गत धारा 3 में अन्तर्विष्ट निर्वचन खंड को ध्यान में रखते हुए उसकी ओर से कार्य करने के लिए प्राधिकृत न्यायाधीश आएंगे । नियमों का अध्याय 3 प्रशासनिक कार्य का उपबंध करता है । नियमों के नियम 14 के निबंधनानुसार संविधान के 235 या 227 में विहित अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण विषयक न्यायालय के प्रशासनिक कार्य, इसमें व्यक्त उपबंध के अनुसार निपटाए जाने थे । (पैरा 14)

यह किसी संविवाद की परिधि के परे है कि संविधान के अनुच्छेद 5 के अर्थान्तर्गत अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण उच्च न्यायालय का होता है । उच्च न्यायालय के ऐसे नियंत्रण के अन्तर्गत अधीनस्थ न्यायालयों के कार्यकरण की सामान्य अधीक्षण पीठासीन अधिकारियों पर अनुशासनिक नियंत्रण, अनुशासनिक कार्यवाहियां, स्थानांतरण, पुष्टिकरण और प्रोन्नति तथा नियुक्ति आदि के कार्य आते हैं । (पैरा 17)

यह भी सही है कि संविधान के अनुच्छेद 235 और 229 के अधीन मुख्य न्यायमूर्ति की शक्तियां भिन्न और सुस्पष्ट हैं, जबकि अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण समग्र रूप से उच्च न्यायालय में निहित होता है, उच्च न्यायालय पर नियंत्रण केवल मुख्य न्यायमूर्तिओं में निहित होता है । (पैरा 18)

राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने नियमों के नियम 21 के उपनियम (2) के निबंधनानुसार मुख्य न्यायमूर्ति को समिति गठित करने के लिए प्राधिकृत किया । मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा ऐसी समिति का गठन नियमों के निबंधनानुसार किये जाने के कारण स्वयं उच्च न्यायालय द्वारा किया गया अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए। ऐसे प्राधिकार देने की कार्रवाई सीमित नहीं है क्योंकि जिस विस्तार तक ऐसे प्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है

उसे उसके द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, नियमों के नियम 21 के उपनियम (2) के निबंधनानुसार प्राधिकार अध्याय 3 जो न्यायालय के प्रशासनिक कार्य के संबंध में हैं, अधिकथित होने के कारण संविधान के अनुच्छेद 235 के निबंधनानुसार उच्च न्यायालय के नियंत्रण के विषय में भी चाहे जो है, इस बात का कोई संदेह नहीं हो सकता कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को उक्त शक्ति का प्रयोग करने की अधिकारिता थी । (पैरा 19)

जब एक बार समिति गठित करने हेतु मुख्य न्यायमूर्ति को प्राधिकृत करने वाला ऐसा संकल्प पारित कर दिया गया हो तो इस बाबत किसी भी प्रकार का कोई संदेह नहीं हो सकता है उस निमित्त मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा शक्ति का प्रयोग पूर्णतः विधिमान्य था । अतः यह दलील देना सही नहीं है कि मुख्य न्यायमूर्ति केवल पूर्ण न्यायालय के अनुमोदन से दो न्यायाधीशों की समिति नियुक्त कर सकते थे । (पैरा 20)

तथापि सुस्पष्टतः मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा शक्ति का प्रयोग नियमों के निबंधनानुसार किया जाना चाहिए । (पैरा 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2000]	जे.टी. 2000 (9) एस.सी. 464 : **बृज नाथ पांडे** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ;	12
[1999]	(1999) 7 एस.सी.सी. 739 : **योगीनाथ डी. बागडे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	17
[1999]	(1999) 3 एस.सी.सी. 422 : **बाबू वर्गीश और अन्य** बनाम **केरल बार काउंसिल और अन्य** ;	41
[1999]	(1999) 1 एस.सी.सी. 465 : **उड़ीसा लघु उद्योग निगम लि. और एक अन्य** बनाम **नरसिंहा चरण मोहंती और अन्य** ;	13, 42
[1998]	(1998) 3 एस.सी.सी. 72 : **राजस्थान उच्च न्यायालय** बनाम **रमेश चंद पालीवाल** ;	17
[1997]	(1997) 6 एस.सी.सी. 339 : **बम्बई उच्च न्यायालय** बनाम **शिरीश कुमार रंगराव पाटिल** ;	20
[1995]	(1995) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 456 : **उ. प्र. आवास एवं विकास परिषद् और एक अन्य** बनाम **फ्रेंड्स कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लि. और एक अन्य** ;	39
[1992]	(1992) 1 एस.सी.सी. 119 : **अखिल भारतीय न्यायाधीश एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ** ;	17
[1989]	(1989) 3 एस.सी.सी. 132 : **मराठवाड़ा विश्वविद्यालय** बनाम **शेषराव बलवंत राव चव्हाण** ;	41
[1988]	[1988] 4 उम.नि.प. 979 = (1988) 3 एस.सी.सी. 211 : **रजिस्ट्रार, मद्रास उच्च न्यायालय** बनाम **आर. राजय्या** ;	12,35
[1979]	[1979] 1 उम.नि.प. 1220 = (1978) 2 एस.सी.सी. 102 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **बटुक देव पति त्रिपाठी और एक अन्य** ;	12,34

[1976] (1976) 2 एस.सी.सी. 977 :
हरियाणा राज्य बनाम **इन्दर प्रकाश आनंद** ; 17

[1976] (1976) 3 एस.सी.सी. 327 :
जिला न्यायाधीश बरदाकांत मिश्र बनाम **उड़ीसा उच्च न्यायालय** ; 17

[1975] (1975) 1 एस.सी.सी. 843 :
पंजाब उच्च न्यायालय बनाम **हरियाणा राज्य** ; 17

[1973] [1973] 3 उम.नि.प. 787 = (1973) 2 एस.सी.सी. 543 :
परमेश्वरी प्रसाद गुप्ता बनाम **भारत संघ** ; 41

[1971] (1971) 2 एस.सी.सी. 9 :
असम राज्य बनाम **एस.एन. सेन** ; 17

[1953] (1953) 1 ऑल इंग्लैण्ड लॉ रिपोर्ट्स 1113 :
बर्नार्ड बनाम **नेशनल डॉक लेबर बोर्ड** । 41

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2001 की सिविल अपील सं. 59.

संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील ।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से सर्वश्री दीपांकर पी. गुप्त (वरिष्ठ अधिवक्ता), ए. एन. बारादय्यर, राज कुमार गुप्त, शिव कुमार गुप्ता, सन्ध्या गोस्वामी (अनुपस्थित) सुशील बलबादा, सूर्यकान्त, देवेन्द्र सिंह (अनुपस्थित), एस. के भट्टाचार्य (अनुपस्थित)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. बी. सिन्हा ने दिया ।

न्या. सिन्हा – 2000 की खंड न्यायपीठ (डी.बी.) सिविल रिट याचिका सं. 671, 987 और 1263 में राजस्थान उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 23 नवम्बर, 2000 के निर्णय और आदेश से ये अपीलें उद्भूत हुई हैं, जिनमें कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा चयन वेतनमान मंजूर किए जाने के लिए मापदंड के बारे में नियुक्त दो न्यायाधीशों की समिति की उन्हें सिफारिशों के प्रभाव को, जिन्हें बाद में उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायालय द्वारा अनुमोदित कर दिया गया था, प्रश्नगत किया गया है ।

2. राजस्थान उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 225 के साथ पठित राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1949 की धारा 46 के अधीन उसे प्रदत्त अपनी शक्ति और उस निमित्त समर्थकारी अन्य सभी शक्तियों का प्रयोग करते हुए राजस्थान उच्च न्यायालय नियम, 1952 (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "नियम" कहा गया है) नामक नियम बनाए ।

3. ये नियम 1 अक्तूबर, 1952 को या इसके आस-पास प्रवृत्त हुए । उक्त नियम का अध्याय 3 उच्च न्यायालय के प्रशासनिक कार्य के बारे में है ।

4. तारीख 26 नवम्बर, 1966 को उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय के संकल्प द्वारा उच्च न्यायालय के नियमों का संशोधन किया गया, उसके कार्यवृत्त का सुसंगत भाग इस प्रकार है :–

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के चैम्बर में तारीख 26 नवम्बर, 1966, शनिवार को पूर्वाह्न 11 बजे हुई पूर्ण न्यायालय बैठक की कार्यवाही का कार्यवृत्त :

कार्यसूची :–

I.. न्यायालय के प्रशासनिक कार्य से संबंधित उच्च न्यायालय नियमों में संशोधन ।

II. कोई अन्य विषय, जिस पर माननीय मुख्य न्यायमूर्ति चर्चा करना चाहें ।

विनिश्चय :

मद सं. II

प्रशासनिक और कार्यपालक कार्य विषयक उच्च न्यायालय नियम के अध्याय 3 में माननीय प्रशासनिक न्यायाधीश द्वारा प्रस्तावित संशोधनों पर विचार किया गया ।

संकल्प किया गया कि राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1949 की धारा 46 और भारत के संविधान के अनुच्छेद 225, 227, 233, 234 और 235 द्वारा प्रदत्त शक्तियों और इस निमित्त न्यायालय को समर्थ बनाने वाली अन्य सभी शक्तियों के प्रयोग में न्यायालय के प्रशासनिक और कार्यपालक कार्य विषयक उच्च न्यायालय नियम के अध्याय 3 में निम्नलिखित परिवर्तन और संशोधन किया जाए :–

1. अध्याय 3 के शीर्षक में आने वाले "कार्यपालिक और" शब्दों का लोप किया जाएगा ;

2. नियम 14 से 22 के स्थान पर निम्नलिखित नियम प्रतिस्थापित किए जाएंगे :

* "14. **अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण तथा न्यायालयों और अधिकरणों के अधीक्षण विषयक प्रशासनिक कार्य** :– संविधान के अनुच्छेद 235 या अन्यथा के अधीन इस न्यायालय में निहित होने वाले अधीनस्थ न्यायालयों पर के नियंत्रण संविधान के अनुच्छेद 227 या अन्यथा के अधीन इस न्यायालय में निहित होने वाले न्यायालयों और अधिकरणों के अधीक्षण विषयक इस न्यायालय के सभी प्रशासनिक कार्यों का निपटारा यहां इसमें पश्चात् यथा उपबंधित रीति से किया जाएगा ।

15. **ऐसे विषय जिन पर सभी न्यायाधीशों से परामर्श किया जाएगा** – निम्नलिखित विषयों पर न्यायालय के सभी न्यायाधीशों से परामर्श किया जाएगा, अर्थात् :–

(ग) अधीनस्थ न्यायालयों के मार्गदर्शन के लिए नियमों में परिवर्तन या नए नियम जारी करने की प्रस्थापना ;

(घ) न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति, प्रोन्नति और ज्येष्ठता ;

(ङ) न्यायिक अधिकारियों की प्रोन्नति को रोकना, उसका अधिक्रमण करना या उनकी (पंक्ति में) अवनति करना ;

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"14. **Administrative business relating to control over subordinate courts and to superintendence over courts and tribunals** – All administrative business of the Court relating to the control over subordinate courts vested in the Court under Article 235 of the Constitution or otherwise and to the superintendence over the courts and tribunals vested in the Court under Article 227 of the Constitution or otherwise shall be disposed of as provided hereinafter.

15. **Matters on which all Judges shall be consulted** – On the following matters all the Judges of the Court shall be consulted, namely :–

(c) proposals as to changes in or the issue of new rules for the guidance of subordinate courts ;

(d) appointment, promotion and seniority of Judicial officers ;

(e) withholding of promotion, supersession or reduction of Judicial Officers ;

(च) किसी न्यायिक अधिकारी का (पद से) हटाया जाना या उसकी पदच्युति;

(छ) दंड से भिन्न रूप में न्यायिक अधिकारियों की अनिवार्य सेवानिवृत्ति ;

(ज) मुख्य न्यायमूर्ति या किसी अन्य न्यायाधीश द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नीति विषयक महत्वपूर्ण प्रश्न या न्यायालय की शक्तियों और प्रास्थिति को प्रभावित करने वाले प्रश्न ;

(झ) ऐसा कोई विषय जो मुख्य न्यायमूर्ति या नियम 16 के अधीन गठित प्रशासनिक समिति उनके समक्ष विचारार्थ रखना ठीक समझे ।

16. **प्रशासनिक समिति** – (1) न्यायाधीशों की एक समिति गठित की जाएगी जो मुख्य न्यायमूर्ति, प्रशासनिक न्यायाधीश और ऐसे अन्य न्यायाधीश या न्यायाधीशों से, जिसे या जिन्हें मुख्य न्यायमूर्ति समय-समय पर नियुक्त करें, मिलकर बनेंगे । इस समिति को प्रशासनिक समिति कहा जाएगा ।

(2) इन नियमों के अध्यधीन रहते हुए, प्रशासनिक समिति नियम 17 में उपवर्णित विषयों की बाबत न्यायालय के लिए अपना प्रशासनिक कार्य करेगी ।

17. **ऐसे विषय जिन पर प्रशासनिक समिति से परामर्श किया जाएगा** – प्रशासनिक समिति से निम्नलिखित विषयों पर परामर्श किया जाएगा, अर्थात् :–

(क) अधीनस्थ न्यायालयों को सामान्य पत्र जारी करना ;

(ख) विवरणियों और विवरणों को तैयार करने के बारे में निदेश जारी करना ; और

(ग) ऐसा कोई अन्य विषय जिसे मुख्य न्यायमूर्ति या प्रशासनिक न्यायाधीश उसके समक्ष रखना चाहें ।

(f) removal or dismissal of any Judicial Officer ;

(g) compulsory retirement of Judicial Officers otherwise than by way of punishment ;

(h) important questions of policy or those affecting the powers and status of the Court laid before the Court by the Chief Justice or any other Judge ;

(i) any matter which the Chief Justice or the Administrative Committee, as constituted under Rule 16, may consider fit to be laid before them for consideration.

16. **Administrative Committee** – (1) A Committee of Judges shall be formed composed of the Chief Justice the Administrative Judge and such other Judge or Judges as the Cheif Justice from time to time, appoint. The Committee shall be called the Administrative Committee.

(2) Subject to these Rules, the Administrative Committee shall act for the Court in its Administrative business in respect of the matters enumerated in rule 17.

17. Matters on which the Administrative Committee shall be consulted. The Administrative Committee shall be consulted on the following matters namely –

(a) the issue of general letters to subordinate courts ;

(b) the issue of directions regarding the preparation of returns and statements; and

(c) any other matter which the Chief Justice or the Administrative Judge may desire to be brought before it.

18. **परामर्श कैसे किया जाए** – नियम 15 और 17 में क्रमशः न्यायाधीशों और प्रशासनिक समिति से परामर्श, यथास्थिति न्यायाधीशों या प्रशासनिक समिति को विषय से संबंधित कागजों-पत्रों के परिचालन द्वारा या मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा बुलायी गयी न्यायाधीशों की या प्रशासनिक समिति की बैठक के समक्ष विषय को रखकर किया जाएगा ।

19. **मतभेद की दशा में विनिश्चय** – नियम 15 और 17 में निर्दिष्ट सभी विषयों का निपटारा बहुमत के अनुसार किया जाएगा **और** यदि न्यायाधीश, जिनके अंतर्गत मुख्य न्यायमूर्ति भी हैं, राय में बराबर संख्या में बंटे हैं तो मुख्य न्यायमूर्ति **के मतानुसार** किया जाएगा ।

20. **मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा निपटाया जाने वाला प्रशासनिक कार्य** – नियम 15 और 17 के अध्यधीन रहते हुए नियम 14 में निर्दिष्ट प्रशासनिक कार्य का निपटारा मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा किया जाएगा ।

21. **प्रशासनिक न्यायाधीश की नियुक्ति और कार्य का आबंटन** – (1) मुख्य न्यायमूर्ति न्यायालय का सामान्य प्रशासन चलाने के लिए एक न्यायाधीश की नियुक्ति करेगा। ऐसे न्यायाधीश को प्रशासनिक न्यायाधीश कहा जाएगा और वह नियम 22 के अनुसार प्रशासनिक कार्य को निपटाएगा ।

(2) मुख्य न्यायमूर्ति, किसी साधारण या विशेष आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट कार्य निपटारे के लिए किसी अन्य न्यायाधीश या न्यायाधीशों की समिति को भी आबंटित कर सकेगा और ऐसा न्यायाधीश या न्यायाधीशों की समिति मुख्य न्यायमूर्ति के किन्हीं विशेष निदेशों के अध्यधीन रहते हुए उसका निपटारा करेगा या करेगी ।

" 26. **परिचालन के पश्चात् मुख्य न्यायमूर्ति को प्रस्तुत किए जाने वाले कागज-पत्र** – राय के लिए किन्हीं कागज-पत्रों को परिचालित करने के पश्चात्, उन्हें मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष पुनः प्रस्तुत किया जाएगा, जो मामले की जांच करेगा और नियम 19 के अनुसार आदेश जारी करेगा ।"

---

18. **Consultation how made** – The consultation with the Judges and the Administrative Committee, referred to in Rules 15 and 17 respectively, shall be made either by circulating the papers connected with the matter among the Judges or the Administrative Committee, as the case may be or by laying the matter before a meeting of the Judges or the Administrative Committee called by the Chief Justice.

19. **Decision in case of difference of opinion** – All the matters referred to in Rules 15 and 17 shall be disposed of in accordance with the views of the majority, and in case the Judges, including the Chief Justice are equally divided in accordance with the views of the Chief Justice.

20. **Administrative business to be disposed of by the Chief Justice** – Subject to Rules 15 and 17, the administrative business referred to in Rule 14 shall be disposed of by the Chief Justice.

21. **Appointment Administrative Judge and allocation of work** – (1) The Chief Justice shall appoint a Judge to carry on the general administration of the Court. Such Judge shall be called the Administrative Judge and shall dispose of the administrative business in accordance with rule 22.

(2) The Chief Justice may also, by a general or special order, allocate specified business for disposal to any other Judge or a Committee of Judges, and such Judge or Committee of Judges shall dispose of the same subject to any special directions of the Chief Justice.

" 26. **Papers to be submitted to the Chief Justice after circulation** – After any papers have been circulated for opinion, they shall be submitted again to the Chief Justice, who shall examine the matter and issue orders in accordance with rule 19."

"29. **गणपूर्ति (कोरम)** – कारबार के संव्यवहार के लिए आवश्यक गणपूर्ति प्रशासनिक समिति की बैठक की दशा में सदस्यों के दो-तिहाई से अन्यून और न्यायाधीशों की बैठक के मामले में आधे न्यायाधीशों से अन्यून नहीं होगी।

1. विद्यमान नियम 32 को उस नियम के उपनियम (1) के रूप में पुनर्संख्यांकित किया जाएगा और निम्नलिखित नया उपनियम (2) जोड़ा जाएगा –

2. संदेह दूर करने के लिए एतद्द्वारा यह उल्लेख किया जाता है कि मुख्य न्यायमूर्ति, प्रशासनिक न्यायाधीश अथवा ऐसे किसी अन्य न्यायाधीश या न्यायाधीशों द्वारा, जिन्हें मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा निपटारे के लिए कार्य समनुदेशित किया गया है, निपटाया गया सभी प्रशासनिक कार्य न्यायालय द्वारा निपटाया गया समझा जाएगा ।"

उक्त नियम का नियम 32 इस प्रकार है :–

* "32. **इस अध्याय में अधिकथित प्रक्रिया में कोई अनियमितता होने का या उस प्रक्रिया का पालन न किए जाने का प्रभाव** –

(1) इस अध्याय में अधिकथित प्रक्रिया में कोई अनियमितता होने से या उस प्रक्रिया का पालन न किए जाने से इन नियमों के अधीन पारित किसी आदेश या की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(2) संदेह को दूर करने के लिए एतद्द्वारा यह उल्लेख किया जाता है कि मुख्य न्यायमूर्ति, प्रशासनिक न्यायाधीश अथवा ऐसे किसी अन्य न्यायाधीश या न्यायाधीशों द्वारा जिन्हें मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा निपटारे के लिए कार्य समनुदेशित किया गया है, निपटाया गया सभी प्रशासनिक कार्य न्यायालय द्वारा निपटाया गया समझा जाएगा।"

5. तारीख 17 जनवरी, 1969 को या इसके आस-पास राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा नियम, 1969 अस्तित्व में आया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ उसके नियम 23 के निबंधनानुसार चयन वेतनमान मंजूर करने विषयक उपबंध हैं जो इस प्रकार हैं :–

"29. **Quorum** – The quorum necessary for the transaction of business shall be not less than two-third of the Members in the case of a meeting of the Administrative Committee and not less than one-half of the Judges in the case of judges meeting.

1. The existing Rule 32 shall be renumbered as Sub-Rule (1) of that Rule, and the following new Sub-Rule (2) shall be added –

2. For the removal of doubt, it is hereby mentioned that all administrative work disposed of by the Chief Justice, the Administrative Judge or any other Judge or Judges to whom the work has been assigned by the Chief Justice for disposal shall be demed to be disposed of by the Court."

* "32. **Effect of any irregularity in or omission to follow the procedure laid down in this Chapter**–

(1) No irregularity in, or omission to follow, the procedure laid down in this Chapter shall affect the validity of any order passed or anything done under these Rules.

(2) For the removal of doubt, it is hereby mentioned that all administrative work disposed of by the Chief Justice, the Administrative Judge or any other Judge or Judges to whom the work has been assigned by the Chief Justice for disposal shall be deemed to be disposed of by the Court"

"**चयन श्रेणी के पदों पर नियुक्ति** – सेवा के चयन श्रेणी के पदों पर नियुक्ति मैरिट (योग्यता) के आधार पर न्यायालय के परामर्श से राज्यपाल द्वारा की जाएगी ।"

6. तारीख 30 अप्रैल, 1990 को या इसके आस-पास पूर्ण न्यायालय ने चयन वेतनमान पर नियुक्ति से संबंधित राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा के न्यायिक अधिकारियों की व्यक्तिगत मैरिट (योग्यता) पर विचार करने के प्रयोजन के लिए उक्त न्यायालय के दो माननीय न्यायाधीशों की समिति गठित की । उसके अनुसरण या अग्रसर करने में दो न्यायाधीशों की समिति ने इस पर विचार किया और यह सुझाव दिया कि उसके लिए योग्यता मानदंड के लिए पिछले पांच वर्षों की वार्षिक चरित्र रिपोर्टों पर विचार किया जाए । तथापि, पूर्ण न्यायालय ने तारीख 5 अक्तूबर, 1990 के संकल्प द्वारा उक्त प्रयोजन केवल-पांच वार्षिक चरित्र रिपोर्टों में से केवल तीन अच्छी वार्षिक चरित्र रिपोर्टों पर विचार करने का विनिश्चय किया । राजस्थान न्यायिक सेवा के अति काल वेतनमान की मंजूरी के बारे में, उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय ने तारीख 14 अगस्त, 1997 के संकल्प द्वारा अति काल वेतनमान की मंजूरी के लिए सात वार्षिक चरित्र रिपोर्टों में से पांच अच्छी वार्षिक चरित्र रिपोर्टों के मानदंड को स्वीकार किया ।

7. तथापि, उच्च न्यायालय के कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति ने तारीख 26 मार्च, 1998 के आदेश द्वारा राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा के स्थानापन्न रूप से प्रोन्नत अधिकारियों को उनकी सेवा में उनकी अधिष्ठायी नियुक्ति के लिए और राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा के अधिकारियों की प्रोन्नति साधारण वेतनमान से चयन वेतनमान में करने के लिए विचार/जांच करने और सिफारिशें करने के लिए उक्त न्यायालय के दो न्यायाधीशों की एक समिति गठित की । समिति ने विद्यमान नियम और पूर्ण न्यायालय के संकल्पों के आलोक में सभी पात्र अभ्यर्थियों के मामले पर विचार कर 30 मार्च, 1998 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । तथापि अपना निष्कर्ष निकालने के लिए समिति ने उन अधिकारियों को चयन वेतनमान मंजूर करने के लिए उपयुक्त और योग्य पाया जिन्हें सात में से कम-से-कम पांच उत्कृष्ट/बहुत अच्छी/अच्छी वार्षिक चरित्र रिपोर्ट अभिप्राप्त हुई थीं और जिनके विरुद्ध कोई प्रतिकूल प्रविष्टि अभिलिखित नहीं की गई थी । उन अधिकारियों के संबंध में, जिनकी वार्षिक चरित्र रिपोर्टें किसी न किसी कारण से अभिलिखित नहीं की गई हैं, समिति ने कुछ समय के लिए उनके मामलों पर विचार आस्थगित कर दिया । तथापि, समिति ने 27 अप्रैल, 1999 को उनकी अतिरिक्त रिपोर्टें फाइल कीं जिनके मामले पहले आस्थगित कर दिए गए थे ।

8. मुख्य न्यायमूर्ति ने इस मामले को 30 अप्रैल, 1999 को पूर्ण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। इसमें उच्च न्यायालय के बीस माननीय न्यायाधीशों ने भाग लिया । 30 अप्रैल, 1999 के संकल्प द्वारा, पूर्ण न्यायालय ने उक्त दो न्यायाधीशों की समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विचार किया और उन 25 अधिकारियों के नामों का अनुमोदन किया जिन्हें चयन वेतनमान देने के लिए उपयुक्त पाया गया था । तथापि, चार अन्य लोगों के साथ इस मामले के प्रत्यर्थियों के मामलों को आस्थगित कर दिया गया । उक्त दो न्यायाधीशों की समिति के अतिरिक्त रिपोर्ट विषयक मामले को तारीख 22 नवम्बर, 1999 को पुनः पूर्ण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया । इसने समिति की रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया और इस मामले में के प्रत्यर्थियों को चयन वेतनमान दिये जाने से इनकार कर दिया । उच्च न्यायालय द्वारा की गई पूर्वोक्त सिफारिशों के अनुसरण में या उन्हें अग्रसर करते हुए, राज्यपाल ने तारीख 5 फरवरी, 2000 की अधिसूचना द्वारा उसमें नामित उनके नामों के आगे क्रमशः वर्णित तारीख से उच्चतर न्यायिक सेवा अधिकारियों की चयन श्रेणी के पद पर नियुक्ति कर दी ।

9. इन अपीलों में से प्रत्येक में प्रथम प्रत्यर्थी ने राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर न्यायपीठ के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल कर उन्हें चयन श्रेणी न दिये जाने को प्रश्नगत करते हुए रिट याचिकाएं फाइल कीं ।

10. आक्षेपित निर्णय का आधार बताते हुए उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ- साथ यह अभिनिर्धारित किया:–

(1) कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति दो न्यायाधीशों की समिति गठित करने के लिए प्राधिकृत नहीं थे, इस प्रकार वह कोई योग्यता मानदंड नहीं बना सकती/अधिकथित नहीं कर सकती ।

(2) चूंकि उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीशों से परामर्श नहीं किया गया, इसलिए अकेले कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नियुक्त समिति 1952 के नियम 15 के उपनियम (ज) को ध्यान में रखते हुए योग्यता मानदंड नहीं तैयार कर सकती ।

(3) पूर्ण न्यायालय द्वारा स्वीकृत पूर्व नीति विषयक विनिश्चय को परिवर्तित नहीं किया जा सकता क्योंकि 1952 का नियम 15 में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के पूर्व परामर्श का उपबंध है और चूंकि इस मामले में सभी न्यायाधीशों से परामर्श नहीं किया गया इसलिए उसके पश्चात्वर्ती अनुमोदन से अवैधता को दूर नहीं किया जा सकता ।

11. उक्त रिट याचिकाओं का निपटारा निम्नलिखित अनुदेश देते हुए किया गया :–

(i) हम प्रत्यर्थियों को सभी तीन याचियों के मामलों पर वर्ष 1990 और 1994 में पूर्ण न्यायालय द्वारा बनाए गए और अनुमोदित योग्यता मानदंड को ध्यान में रखते हुए 1998 और 1999 में हुई रिक्तियों के प्रति नए सिरे से विचार करने का निदेश देते हैं । यदि वे राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा के चयन वेतनमान पर प्रोन्नति के लिए पात्र पाए जाते हों तो उन्हे राजस्थान सेवा नियम के नियम 18 के निबंधनानुसार अतिरिक्त पद सृजित कर चयन वेतनमान दिया जा सकता है ।

(ii) यह विनिश्चय तारीख 5 फरवरी, 2000 के उस आदेश को प्रभावित नहीं करेगा जिसके द्वारा छब्बीस अधिकारियों को राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा का चयन वेतनमान दिया गया था ।

(iii) जैसाकि ऊपर निदेश दिया गया है, नये सिरे से विचार यथासंभव शीघ्रता से किये जाने की प्रत्याशा है और इसी बीच राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा के चयन वेतनमान के तीन पद रिक्त रखे जाएंगे ।

तथापि यह मत व्यक्त किया गया :–

"तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि यद्यपि हमने प्रत्यर्थियों को चयन वेतनमान देने की संपूर्ण प्रक्रिया को अवैध घोषित कर दिया है फिर भी हम छब्बीस न्यायिक अधिकारियों के चयन वेतनमान दिये जाने को अस्थिर नहीं करना चाहते क्योंकि वे हमारे समक्ष पक्षकार नहीं है । अतः हम निदेश देते हैं कि यह विनिश्चय प्रत्यर्थी के तारीख 5 फरवरी, 2000 के उस आदेश को प्रभावित नहीं करेगा जिसके द्वारा छब्बीस न्यायिक अधिकारियों को चयन वेतनमान दिया गया था । लेकिन यदि याची 1993 से 1997 और 1994 से 1998 के उनके सेवा अभिलेख पर विचार करने के पश्चात् चयन वेतनमान के पात्र पाये जाते हैं तो उन पर 1998 और 1999 के चयन के संदर्भ में विचार किया जाएगा, जब उनके कनिष्ठ सहयोगियों को प्रोन्नति दी गई थी । उस दशा में याचियों को राजस्थान सेवा नियम के नियम 18 के निबंधनानुसार अतिरिक्त पद सृजित कर राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा का चयन वेतनमान दिया जा सकता है ।"

12. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल का यह निवेदन है कि नियम के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति को समिति गठित करने की कोई अधिकारिता नहीं थी। यह दलील दी गई कि जब एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया जाता है कि कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति को समिति गठित करने की अधिकारिता थी और उक्त समिति के विनिश्चय को पूर्ण न्यायालय ने अनुमोदित कर दिया था तो पूर्व नीति विषयक विनिश्चय को उच्च न्यायालय द्वारा परिवर्तित माना जाना चाहिए । विद्वान् काउंसेल ने उक्त दलीलों के समर्थन में **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **बटुक देव पति त्रिपाठी और एक अन्य**[1], **बृज नाथ पांडे** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] और **रजिस्ट्रार, मद्रास उच्च न्यायालय** बनाम **आर. राजय्या**[3] वाले मामलों का दृढ़तापूर्वक अवलंब लिया ।

---

[1] [1979] 1 उम.नि.प. 1220 = (1978) 2 एस.सी.सी. 102.

[2] जेटी 2000 (9) एस.सी. 464.

[3] [1988] 4 उम.नि.प. 979 = (1988) 3 एस.सी.सी. 211.

13. दूसरी ओर प्रत्येक मामले में प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री सूर्य कांत ने यह निवेदन किया कि चूंकि समिति गठित करने की मुख्य न्यायमूर्ति की शक्ति कानूनी नियंम द्वारा शासित होती है इसलिए यह अवश्य अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उन्होंने उक्त समिति की नियुक्ति में बिना अधिकारिता के कार्य किया है। उक्त दलील के समर्थन में **उड़ीसा लघु उद्योग निगम लि. और एक अन्य** बनाम **नरसिंहा चरण मोहंती और अन्य**[1] वाले मामले का दृढ़तापूर्वक अवलंब लिया गया ।

14. "मुख्य न्यायमूर्ति" पद के अन्तर्गत धारा 3 में अन्तर्विष्ट निर्वचन खंड को ध्यान में रखते हुए उसकी ओर से कार्य करने के लिए प्राधिकृत न्यायाधीश आएंगे । नियमों का अध्याय 3 प्रशासनिक कार्य का उपबंध करता है । नियमों के नियम 14 के निबंधनानुसार संविधान के 235 या 227 में विहित अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण विषयक न्यायालय के प्रशासनिक कार्य, इसमें व्यक्त उपबंध के अनुसार निपटाये जाने थे।

15. उच्च न्यायालय ने ये नियम बनाए हैं। अतः, उच्च न्यायालय इन नियमों को संशोधित भी कर सकता है । इस मामले में के रिट याचियों-प्रथम प्रत्यर्थियों का पक्षकथन यह नहीं है कि उच्च न्यायालय को राजस्थान न्यायिक सेवा या राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा के अधिकारियों के चयन वेतनमान मंजूर करने के लिए मानदंड बनाने की कोई अधिकारिता नहीं थी । यह सही हो सकता है कि तारीख 5 अक्तूबर, 1990 के संकल्प के आधार पर पूर्ण न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह राय व्यक्त की कि चयन वेतनमान मंजूर करने के प्रयोजन के लिए 5 वार्षिक चरित्र रिपोर्टों में से 3 अच्छी वार्षिक चरित्र रिपोर्टों पर विचार किया जाए, लेकिन पूर्ण न्यायालय का उक्त विनिश्चय उसके संशोधनांतरण के अध्यधीन था ।

16. पूर्वोक्त नियमों के पढ़ने से स्पष्टतया यह दर्शित होता है कि मुख्य न्यायमूर्ति को समिति गठित करने की अपेक्षित अधिकारिता है और नियम 15 के निबंधनानुसार उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीशों से परामर्श के पश्चात् समिति की रिपोर्ट न्यायालय का विनिश्चय हो जाएगी । (ऊपर) यथा उद्धृत नियम 29(2) और नियम 32 से भी स्पष्टतया यह दर्शित होता है कि अध्याय 3 में अधिकथित प्रक्रिया में चाहे कोई भी अनियमितता हुई हो, नियमों के अधीन पारित आदेश या की गई किसी बात की विधिमान्यता को प्रभावित नहीं करेगी और इसे न्यायालय द्वारा निपटाया गया समझा जाएगा । सृजित विधिक कल्पना को पूर्णतः लागू भी किया जाना चाहिए ।

17. यह किसी संविवाद की परिधि के परे है कि संविधान के अनुच्छेद 235 के अर्थान्तर्गत अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण उच्च न्यायालय का होता है । उच्च न्यायालय के ऐसे नियंत्रण के अन्तर्गत अधीनस्थ न्यायालयों के कार्यकरण की सामान्य अधीक्षण पीठासीन अधिकारियों पर अनुशासनिक नियंत्रण, अनुशासनिक कार्यवाहियां, स्थानांतरण, पुष्टिकरण और प्रोन्नति तथा नियुक्ति आदि के कार्य आते हैं । उच्च न्यायालय में निहित ऐसा नियंत्रण संपूर्ण होता है । [**राजस्थान उच्च न्यायालय** बनाम **रमेश चंद पालीवाल**[2], **जिला न्यायाधीश, बरदाकांत मिश्र** बनाम **उड़ीसा उच्च न्यायालय**[3], **पंजाब उच्च न्यायालय** बनाम **हरियाणा राज्य**[4], **योगीनाथ डी. बागडे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[5], **हरियाणा राज्य** बनाम **इन्दर प्रकाश आनंद**[6], और **असम राज्य** बनाम **एस.एन. सेन**[7] वाले मामले देखिए]

18. यह भी सही है कि संविधान के अनुच्छेद 235 और 229 के अधीन मुख्य न्यायमूर्ति की शक्तियां भिन्न और सुस्पष्ट हैं, जबकि अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण समग्र रूप से उच्च न्यायालय में निहित होता है, उच्च न्यायालय

---

[1] (1999) 1 एस.सी.सी. 465.
[2] (1998) 3 एस.सी.सी. 72.
[3] (1976) 3 एस.सी.सी. 327.
[4] (1975) 1 एस.सी.सी. 843.
[5] (1999) 7 एस.सी.सी. 739.
[6] (1976) 2 एस.सी.सी. 977.
[7] (1971) 2 एस.सी.सी. 9.

पर नियंत्रण केवल मुख्य न्यायमूर्तियों में निहित होता है । [**अखिल भारतीय न्यायाधीश एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ**[1] वाला मामला देखिए] तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि पूर्ण न्यायालय किसी विषय, चाहे जो हो, की बाबत मुख्य न्यायमूर्ति को प्राधिकृत नहीं कर सकता । पूर्ण न्यायालय द्वारा स्वयं कुछ मामलों को अपने पास रखकर कतिपय विषयों के संबंध में न्यायाधीशों की समिति पर मुख्य न्यायमूर्ति के पक्ष में उसकी ओर से कार्य के लिए प्राधिकृत करना विधि के अनुसार अनुज्ञेय है । कितनी और किस सीमा तक ऐसी शक्ति प्रत्यायोजित की गयी है या प्रत्यायोजित की जा सकती है, नियमों द्वारा ही ज्ञात किया जा सकता है । पूर्ण न्यायालय द्वारा ऐसी शक्ति का भी प्रयोग समय-समय पर किया जा सकता है ।

19. जैसा कि यहां ऊपर बताया गया है, राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने नियमों के नियम 21 के उपनियम (2) के निबंधनानुसार मुख्य न्यायमूर्ति को समिति गठित करने के लिए प्राधिकृत किया । मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा ऐसी समिति का गठन नियमों के निबंधनानुसार किये जाने के कारण स्वयं उच्च न्यायालय द्वारा किया गया अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए। ऐसे प्राधिकार देने की कार्रवाई सीमित नहीं है क्योंकि जिस विस्तार तक ऐसे प्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है उसे उसके द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, नियमों के नियम 21 के उपनियम (2) के निबंधनानुसार प्राधिकार अध्याय 3, जो न्यायालय के प्रशासनिक कार्य के संबंध में हैं, अधिकथित होने के कारण संविधान के अनुच्छेद 235 के निबंधनानुसार उच्च न्यायालय के नियंत्रण के विषय में भी चाहे जो है, इस बात का कोई संदेह नहीं हो सकता कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को उक्त शक्ति का प्रयोग करने की अधिकारिता थी ।

20. जब एक बार समिति गठित करने हेतु मुख्य न्यायमूर्ति को प्राधिकृत करने वाला ऐसा संकल्प पारित कर दिया गया हो तो **बम्बई उच्च न्यायालय** बनाम **शिरीश कुमार रंगराव पाटिल**[2], वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए किसी भी प्रकार का कोई संदेह नहीं हो सकता है उस निमित्त मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा शक्ति का प्रयोग पूर्णतः विधिमान्य था । अतः यह दलील देना सही नहीं है कि मुख्य न्यायमूर्ति केवल पूर्ण न्यायालय के अनुमोदन से दो न्यायाधीशों की समिति नियुक्त कर सकते थे ।

21. तथापि, सुस्पष्टतः मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा शक्ति का प्रयोग नियमों के निबंधनानुसार किया जाना चाहिए । अतः इन अपीलों में उठाये गये प्रश्नों पर उसी दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए ।

22. अतः हमारी राय में उच्च न्यायालय ने पूर्वोक्त निष्कर्ष निकालकर यह स्पष्ट गलती की है कि समिति का गठन अवैध था ।

23. प्रत्यर्थियों की ओर से इस आशय के निवेदन को चयन श्रेणी में नियुक्ति के प्रयोजन के लिए मानदंड तय करने विषयक मामले में दो न्यायाधीशों की समिति का गठन सभी न्यायाधीशों के परामर्श के बिना नहीं किया जा सकता, नामंजूर किया जाता है । उक्त निवेदन पूर्णतः भ्रम धारणा पर आधारित है । चयन श्रेणी की नियुक्ति के लिए योग्यता मानदंड अधिकथित करना भी उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के भीतर था। यह न केवल ऐसा मानदंड अधिकथित कर सकता है बल्कि समय-समय पर इसे संशोधित या उपान्तरित भी कर सकता है । उक्त प्रयोजन के लिए भी मुख्य न्यायमूर्ति समिति नियुक्त कर सकता है जिसकी सिफारिश पूर्ण न्यायालय के अनुमोदन के अध्यधीन होती है । नियमों का नियम 15 यह उल्लेख नहीं करता कि मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा उस निमित्त कोई कार्रवाई आरंभ करने के पूर्व सभी न्यायाधीशों से परामर्श किया जाना चाहिए । नियमों का नियम 15 इसमें विनिर्दिष्ट विषयों में अंतिम विनिश्चय न कि उसके लिए प्रक्रिया का आरंभ करना विहित करता है।

24. यह दलील देना भी गलत है कि उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीशों से पहले परामर्श किया जाना अपेक्षित

---

[1] (1992) 1 एस.सी.सी. 119.

[2] (1997) 6 एस.सी.सी. 339.

है ।

25. प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर विद्वान् काउंसेल की पुनः यह दलील सही नहीं है कि दो न्यायाधीशों की समिति द्वारा पूर्ण न्यायालय द्वारा अनुमोदित योग्यता मानदंडों से भिन्न योग्यता मानदंड निर्धारित करना न्यायोचित नहीं था । दो न्यायाधीशों की समिति ने उस बाबत कोई अंतिम विनिश्चय नहीं किया था । उसने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और वर्तमान नियमों तथा पूर्ण न्यायालय के पूर्व विनिश्चयों पर विचार करते हुए ऐसे कतिपय सिद्धांतों और मानदंडों को लागू किया जो सुस्पष्टतः पूर्ण न्यायालय के अनुमोदन के अध्यधीन थे।

26. ऊपर यथा उद्धृत पूर्ण न्यायालय की बैठक आयोजित करने की प्रक्रिया से सुस्पष्टतः यह दर्शित होता है कि ऐसी बैठक, जिसमें नियम 29 के अधीन यथा अनुध्यात अपेक्षित गणपूर्ति थी, नियमों के अनुपालन में की गई बैठक की कोटि में आएगी ।

27. यद्यपि, नियम 15 यह उपबंध करता है कि इसमें उपवर्णित विषयों में सभी न्यायाधीशों से परामर्श किया जाएगा जबकि नियम 18 उसके ढंग और रीति के बारे में उपबंध करता है ।

28. यदि ऐसा परामर्श परिचालन द्वारा किया जाना होता है तो निस्संदेह सभी न्यायाधीशों को सुसंगत दस्तावेज परिचालित किए जाने अपेक्षित होते हैं। तथापि, यदि ऐसा परामर्श पूर्ण न्यायालय के समक्ष विषय को रखकर किया जाता है तो उसके लिए सभी न्यायाधीशों को आमंत्रित किया जाता है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होगा कि यदि एक या अधिक न्यायाधीश पूर्ण न्यायालय में उपस्थित नहीं होता/होते हैं तो उसके द्वारा पारित संकल्प अविधिमान्य हो जाएगा । नियम 29 गणपूर्ति के संबंध में उपबंध करता है । न्यायालय के न्यायाधीशों की बैठक के मामले में गणपूर्ति तब पूरी होगी यदि इस बैठक में न्यायाधीशों की संख्या के आधे या अधिक न्यायाधीश भाग लेते हैं । इस प्रकार से सभी न्यायाधीशों से परामर्श का यह अर्थ नहीं है कि यदि कुछ न्यायाधीश पूर्ण न्यायालय की बैठक में स्वयं उपस्थित नहीं होते हैं तो सभी न्यायाधीशों से परामर्श पूर्ण नहीं होगा ।

29. हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि 26 नवंबर, 1966 को हुई पूर्ण न्यायालय की बैठक में भी उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीश उपस्थित नहीं थे ।

30. समिति का गठन संबद्ध अधिकारियों के मामलों पर विचार करने के प्रयोजन के लिए किया गया था । रिट याचियों का यह पक्षकथन या दलील नहीं है और न ही हो सकता है कि आरंभ में ही पात्र न्यायिक अधिकारों के मामलों पर विचार करने के प्रयोजन के लिए पूर्ण न्यायालय के समक्ष मामलों का रखना नितांत आवश्यक था । कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश ने विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए समिति का गठन किया । समिति ने मात्र अपनी राय व्यक्त की जो पूर्ण न्यायालय के अनुमोदन के अध्यधीन थी । हमारी राय में, यदि एक बार इस विषय की राय का अनुमोदन पूर्ण न्यायालय द्वारा हो जाता है तो यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि नियमों के नियम 15 का अनुपालन हो गया है ।

31. कानून का निर्वचन उसके पाठ और संदर्भ पर निर्भर करता है । कानून का निर्वचन उस प्रयोजन और उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए जिसके लिए वह कानून बनाया गया है । यद्यपि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति न्यायाधीशों में से प्रथम होते हैं, तथापि उस पद की प्रकृति के अनुसार जिसे वे धारण करते हैं वे राज्य न्यायपालिका के शीर्षस्थ अधिकारी होते हैं । अधीनस्थ न्यायपालिका के लिए समिति गठित करने और/या कार्रवाई करने के लिए मुख्य न्यायमूर्ति के पक्ष में पूर्ण न्यायालय द्वारा दिए गए प्राधिकार को उसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए । नियमों का नियम 15 ऐसे मामलों के बारे में उपबंध करता है जिसमें उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों से परामर्श अपेक्षित होता है ।

32. न्यायाधीशों से परामर्श का प्रश्न तब तक नहीं उठता जब तक उसकी विषयवस्तु की पहचान नहीं कर ली जाती । यह उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति पर है कि वे ऐसे मामलों का पता लगाएं और पूर्ण न्यायालय

के समक्ष उन्हें सुसंगत कागज-पत्रों और दस्तावेज रखें ।

33. अतः, यह स्वयंसिद्ध है कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति न केवल ऐसे विषयों पर न्यायाधीशों की समिति की राय अभिप्राप्त करने और कोई कार्यवाही आरंभ करने के लिए स्वतंत्र है और उसके लिए मात्र उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समक्ष समिति की राय के साथ-साथ ऐसे प्रस्तावों को रखना ही एक विधिक अपेक्षा है ताकि विषय को पूर्णतः विचार-विमर्श द्वारा सुलझाया जा सके । डाक एक बार पूर्ण न्यायालय न्यायाधीशों की समिति द्वारा की गई सिफारिशों को अनुमोदित कर देता है तो वे न्यायालय का विनिश्चय हो जाता है जिसे राज्यपाल के पास उस पर कार्रवाई करने के लिए भेजा जा सकता है ।

34. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **बटुक देव पति त्रिपाठी और एक अन्य**[1], वाले मामले में लगभग समरूप प्रश्न विचार के लिए सामने आया था कि क्या उच्च न्यायालय अपनी शक्ति किसी न्यायाधीश न्यायालय के न्यायाधीशों की एक छोटी समिति को प्रत्यायोजित कर सकता है जिससे कि उसे इस निमित्त कार्य करने के लिए प्राधिकृत किया जा सके । स्पष्ट शब्दों में यह अभिनिर्धारित किया गया :–

"..... उस अनुच्छेद द्वारा उच्च न्यायालयों में निहित नियंत्रण में, हमारे विनिश्चयानुसार विभिन्न प्रकार के अनेक मामले अनुध्यात हैं, जैसे कि स्थानांतरण पाश्चिक पदस्थापनाएं; छुट्टी, प्रारम्भिक प्रोन्नितियों से भिन्न प्रोन्नितियां, लघु शास्तियों का अधिरोपण, जो कि अनुच्छेद 311 के भीतर नहीं आता है, अनिवार्य सेवा निवृत्ति से संबंधित विनिश्चय, ऐसी बड़ी शास्तियों के, जो कि अनुच्छेद 311 के भीतर आती है अधिरोपण के लिए सिफारिशें, चरित्र पुस्तिकाओं में की गई प्रविष्टियां और तत्प्रकार अन्य बातें । यदि प्रत्येक न्यायाधीश को वैयक्तिक रूप से और प्रत्यक्षतः इन विषयों में से प्रत्येक के संबंध में किए गए विनिश्चय से सहयोजित होना पड़ेगा, तो अनेक महत्वपूर्ण ऐसे मामले जो कि उच्च न्यायालयों के प्रशासनिक कार्य-कलापों से संबंधित हैं, उसी प्रकार से बकाया पड़े रह जाएंगे जैसे कि अधीनस्थ न्यायालयों में पड़े रहते हैं । वास्तव में, यह बात कहना कोई भी अतिशयोक्ति नहीं है कि नियंत्रण का प्रयोग अधिक अच्छा और प्रभावी रूप से उस दशा में होगा यदि न्यायाधीशों की लघुतर समिति को अनुच्छेद 235 की परिधि के भीतर आने वाले अनेक मामलों पर विचार करने के लिए न्यायालय का प्राधिकार प्राप्त हो । अतः शक्ति की उस प्रकृति को ध्यान रखते हुए, जो कि यह अनुच्छेद उच्च न्यायालयों को प्रदत्त करता है, हमारी राय यह है कि उस प्रक्रिया को जिसके द्वारा सम्पूर्ण उच्च न्यायालय किसी न्यायालय के न्यायाधीशों या किन्हीं न्यायाधीशों को सम्पूर्ण उच्च न्यायालय की ओर से कार्य करने के लिए प्राधिकृत करता है, "प्रत्यायोजन" के रूप में चित्रित करना गलत है । ऐसे प्राधिकरण से अनुच्छेद 235 का प्रयोजन प्रभावी हो जाता है और वास्तव में उसके बिना अधीनस्थ न्यायाधीश पर उच्च न्यायालयों में निहित नियंत्रण धीमें-धीमें शिथिल और अप्रभावी हो जाएगा । प्रशासनिक कृत्य सम्पूर्ण का मात्र एक भाग है । यद्यपि वह उच्च न्यायालयों के सांविधानिक कृत्यों का महत्वपूर्ण भाग होता है । न्यायिक कृत्य न्यायाधीशों के समय के सबसे अच्छे भाग में किए जाने चाहिए और वास्तव में उन्हीं कृत्यों के करने में समय का उपयोग किया जाना चाहिए । इन दो प्रकार के कृत्यों का संतुलन करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रशासनिक कर्त्तव्यों को सभी न्यायाधीशों की ओर से किन्हीं न्यायाधीशों द्वारा निर्वहन किए जाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए । न्यायिक कृत्य किसी भी साधन द्वारा उत्तरदायित्व के इस प्रकार के वितरण की अनुज्ञा नहीं देते हैं ।"

35. **रजिस्ट्रार, मद्रास उच्च न्यायालय** बनाम **आर. राजय्या**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया :–

"23. राजय्या वाले मामले में उच्च न्यायालय के संकल्प द्वारा तीन न्यायाधीशों की एक पुनर्विलोकन समिति नियुक्त की गई थी । प्रत्यर्थी राजय्या के मामले पर विचार करने के लिए पुनर्विलोकन समिति की 25 जून, 1979 को हुई बैठक में उच्च न्यायालय के केवल दो न्यायाधीश उपस्थित थे । दो न्यायाधीशों ने यह

---

[1] [1979] 1 उम.नि.प. 1220 = (1978) 2 एस.सी.सी. 102.

[2] [1988] 4 उम.नि.प. 979 = (1988) एस.सी.सी. 211.

निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी राजय्या को 2 अप्रैल, 1980 से अनिवार्य रूप से सेवा-निवृत्त किया जाना चाहिए । खंड न्यायपीठ ने यह निष्कर्ष निकाला कि तीसरे न्यायाधीश को 25 जून, 1979 को हुई बैठक की कोई जानकारी नहीं थी किंतु वह दो न्यायाधीशों द्वारा अभिव्यक्त मत से इस थोड़े से उपांतरण के साथ सहमत था कि प्रत्यर्थी मूल नियमों के नियम 56 (घ) के अधीन 3.2.80 से सेवा-निवृत्त होगा । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह मत अपनाया था कि चूंकि सभी तीनों न्यायाधीशों की एक साथ बैठक नहीं हुई थी और उन्होंने प्रत्यर्थी राजय्या की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के प्रश्न पर विचार नहीं किया था और इसके अलावा यह कि तीसरे न्यायाधीश ने दो न्यायाधीशों के इस विनिश्चय में भी यह उपांतरण किया था कि प्रत्यर्थी 3 मार्च, 1980 से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया जाएगा, इसलिए प्रत्यर्थी राजय्या की अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आक्षेपित आदेश दूषित है । यह सच है कि पुनर्विलोकन समिति के सदस्यों की एक साथ बैठक होनी चाहिए और उन्हें एक साथ ही अनिवार्य सेवानिवृत्ति के प्रश्न पर विचार करना चाहिए, किंतु केवल इस कारण कि उनमें से एक न्यायाधीश ने बैठक में भाग नहीं लिया था और तत्पश्चात् वह अन्य दो न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त मत से सहमत हुआ था, प्रत्यर्थी को अनिवार्यतः सेवानिवृत्त करने का समिति का विनिश्चय दूषित नहीं हो जाएगा । तीसरा न्यायाधीश उस तारीख को ठीक करने में न्यायोचित हो सकता है जिससे प्रत्यर्थी अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त होगा किंतु यह एक बहुत गौण विवाद्यक है और इससे हमारी राय में, विनिश्चय अविधिमान्य नहीं हो जाएगा ।

24. दूसरे प्रत्यर्थी, अर्थात् के. राजेश्वरन के मामले में उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया कि पुनर्विलोकन समिति का पूर्ण न्यायालय द्वारा गठन न करके मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा गठन करना अवैध था । हम उच्च न्यायालय के मत को स्वीकार करने में असमर्थ हैं । हम यह नहीं समझते कि मुख्य न्यायमूर्ति किसी पुनर्विलोकन समिति या किसी प्रशासनिक समिति की नियुक्ति क्यों नहीं कर सकता । किंतु हमारी राय में, उच्च न्यायालय एक दृष्टि से सही था, अर्थात् यह कि पुनर्विलोकन समिति का विनिश्चय न्यायाधीशों की बैठक के समक्ष रखा जाना चाहिए। प्रत्यर्थी, के. राजेश्वरन के मामले में पुनर्विलोकन समिति का विनिश्चय और सिफारिश पूर्ण न्यायालय की बैठक के समक्ष नहीं रखी गई थी । न ही यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री है कि वह न्यायाधीशों को परिचालित की गई थी । पुनर्विलोकन समिति की सिफारिश इस अर्थ में पूर्णतः वैध नहीं थी ।"

36. इसके अतिरिक्त, नियम 15 में प्रयुक्त पद 'परामर्श' के तात्पर्य और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इसका साधारण अर्थ निकाला जाना चाहिए । वर्ड्स एंड फ्रेजेज (शब्द और पद) (स्थायी संस्करण 1960, जिल्द 9 पृष्ठ 3) में 'परामर्श' को 'एक साथ कुछ चर्चा करने, विचार-विमर्श करने' के रूप में परिभाषित किया गया है । कार्पस जूरिस सेकेन्डम (जिल्द 16 एक, संस्करण 1956, पृष्ठ 1242) में भी यह कथन है कि परामर्श' शब्द को प्रायः 'एक साथ चर्चा करने, या विचार-विमर्श करने' के रूप में परिभाषित किया जाता है । परामर्श या विचार-विमर्श करने का अवसर देकर उसका प्रयोजन न्यायाधीशों को अपने-अपने दृष्टिकोण से एक-दूसरे को अवगत करने हेतु समर्थ बनाना है और उनके दृष्टिकोणों के सापेक्ष होने पर विचार-विमर्श करना और उनकी परीक्षा करना है । इसमें न तो कोई संदेह है न ही यह विवादित है कि पूर्ण न्यायालय की बैठक में उपस्थित न्यायाधीशों को सभी अपेक्षित दस्तावेज दिये गये थे और उन्हें प्रश्नगत कार्यसूची पर विचार-विमर्श करने का पूर्ण अवसर प्राप्त था ।

37. इस मामले का एक अन्य पहलू भी है जिस पर विचार किया जाना अपेक्षित है । आशय और तात्पर्य पूर्ण रूप से दो न्यायाधीशों की समिति की रिपोर्ट को पूर्ण न्यायालय ने अनुमोदित कर दिया है । जब एक बार रिपोर्ट अनुमोदित हो जाती है तो यह स्वतः पूर्ण न्यायालय का विनिश्चय हो जाती है । वर्तमान मामले में राज्यपाल ने भी उच्च न्यायालयों की सिफारिशों पर कार्रवाई कर दी है । इस मामले में के रिट याची प्रथम प्रत्यर्थी ने न तो नियुक्त व्यक्तियों की नियुक्तियों को प्रश्नगत किया और न ही उच्च न्यायालय को । इस प्रकार, किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं हो सकता है कि दो न्यायाधीशों की समिति की राय पर पूर्ण न्यायालय द्वारा आशय और तात्पर्य पूर्ण रूप से अनुमोदन कर दिया गया है ।

38. हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने इसके अतिरिक्त अपना यह निष्कर्ष निकालकर प्रकट गलती की क्योंकि

यह इस विषय पर विचार करने में असफल रहा कि नियम 15 में ऐसी किसी कार्रवाई के संबंध में, जो मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा आरंभ की जाए, पूर्ण न्यायालय का पूर्व अनुमोदन की अपेक्षा नहीं की गई है।

39. जब कोई अनुमोदन अपेक्षित होता है तो कार्रवाई वैध हो जाती है । यदि यह अननुमोदित हो जाता है तो यह अपनी प्रभाव खो देता है । जब केवल अनुज्ञा की अपेक्षा होती है तब विनिश्चय तब तक प्रभावी नहीं होती जब तक अनुज्ञा अभिप्राप्त नहीं कर ली जाती । [**उ. प्र. आवास एवं विकास परिषद् और एक अन्य** बनाम **फ्रेंड्स कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लि. और एक अन्य**[1] वाला मामला देखिए] इस मामले में पूर्वोक्त दोनों अपेक्षाएं पूरी की गई हैं ।

40. इस मामले का एक अन्य पहलू भी है । नियमों के नियम 2(2) के निबंधनानुसार पूर्ण न्यायालय के विनिश्चयों का भूतलक्षी प्रभाव और पूर्व प्रभावी प्रवर्तन होगा ।

41. मामले का कोई भी दृष्टिकोण अपनाने पर, ऐसे मामले में भी जहां आरंभिक कार्रवाई अवैध हो, इसे उसके सक्षम निकाय द्वारा अनुसमर्थित किया जा सकता है । मामले के इस पहलू पर उच्च न्यायालय ने कतई विचार नहीं किया है । **परमेश्वरी प्रसाद गुप्ता** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "..... यदि यह मान लिया जाए कि अध्यक्ष द्वारा अपीलार्थी की सेवाओं का पर्यवसान करने वाला तार और पत्र 16 दिसम्बर, 1953 को पारित अपीलार्थी की सेवाओं का पर्यवसान करने वाले निदेशक बोर्ड के अविधिमान्य संकल्प के अनुसरण में भेजा गया था, तो भी उससे यह अर्थ नहीं निकलता कि अध्यक्ष की कार्यवाही का अनुसमर्थन निदेशक बोर्ड के नियमित रूप से आयोजित अधिवेशन में नहीं किया जा सकता । मुद्दा यह है कि यह मानते हुए भी कि अध्यक्ष अपीलार्थी की सेवाओं का पर्यवसान करने के लिए वैध रूप से प्राधिकृत नहीं था, वह ऐसा करने में कम्पनी की ओर से कार्य कर रहा था, क्योंकि उसका तात्पर्य अविधिमान्य संकल्प के अनुसरण में कार्य करना था । अतः निदेशक बोर्ड के नियमित रूप से गठित अधिवेशन को यह अधिकार प्राप्त था कि वह उस कार्यवाही का अनुसमर्थन कर सकता है जो कि, भले ही अप्राधिकृत क्यों न रही हो, कम्पनी की ओर से की गई थी । अनुसमर्थन का सम्बन्ध अनुसमर्थित कार्य की तारीख से सदैव होता है और इसलिए यह अभिनिर्धारित करना पड़ेगा कि अपीलार्थी की सेवाओं का पर्यवसान 17 दिसम्बर, 1953 को विधिमान्य रूप से किया गया था ..... ।"

[**मराठवाड़ा विश्वविद्यालय** बनाम **शेषराव बलवंत राव चव्हाण**[3], **बाबू वर्गीश और अन्य** बनाम **केरल बार काउंसिल और अन्य**[4] और **बर्नोर्ड** बनाम **नेशनल डॉक लेबर बोर्ड**[5], वाले मामले भी देखिए ।]

42. **उड़ीसा लघु उद्योग निगम लि. और एक अन्य** बनाम **नरसिंहा चरण मोहंती और अन्य**[6] वाले मामले में, जिसका विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक अवलंब लिया है, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :–

> "..... इसके अलावा न्यायालय प्रोन्नत किये जाने के लिए अभ्यर्थी की उपयुक्तता अधिनिर्णीत करने के लिए उनकी संबद्ध योग्यता का निर्धारण करने का हकदार नहीं है और कर्मचारी को मात्र जो अधिकार प्राप्त है वह विचारणा का अधिकार प्राप्त है । चूंकि वर्तमान मामले में विचारणा के उक्त अधिकार का अतिलंघन नहीं हुआ है, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा उसके मामले पर पुनर्विचार करने के लिए आक्षेपित निदेश जारी करने

---

[1] (1995) सप्ली. (3) एस.सी.सी. 456.
[2] [1973] 3 उम.नि.प. 787 = (1973) 2 एस.सी.सी. 543.
[3] (1989) 3 एस.सी.सी. 132, पैरा 28.
[4] (1999) 3 एस.सी.सी. 422, पैरा 35.
[5] (1953) 1 ऑल इंग्लैंड लॉ रिपोर्ट्स 1113.
[6] (1999) 1 एस.सी.सी. 465.

की कार्रवाई न्यायोचित नहीं थी ....."

43. अतः उक्त विनिश्चय प्रत्यर्थियों की दलीलों के विरुद्ध है ।

44. इसके अतिरिक्त, इन मामलों के प्रथम प्रत्यर्थी श्री पी.पी. सिंह, श्री जी.पी. पांडे को राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा में 1 अगस्त, 2000 से चयन वेतनमान मंजूर किया गया है और श्री पी.के. भाटिया को 29 मार्च, 2000 से चयन वेतनमान दिया गया है । श्री पी.पी. सिंह अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर सेवानिवृत्त भी हो गये हैं ।

45. हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता जिसे तदनुसार अपास्त किया जाता है । अपीलें मंजूर की जाती हैं लेकिन मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है ।

अपील मंजूर की गई।

पा./ज.

[2003] 3 उम. नि. प. 329

सुप्रीत बत्रा और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

27 जनवरी, 2003

न्यायमूर्ति एस. राजेन्द्र बाबू, न्यायमूर्ति डी. एम. धर्माधिकारी और न्यायमूर्ति जी. पी. माथुर

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 141 – देश के विभिन्न आयुर्विज्ञान महाविद्यालयों में एम.बी.बी.एस./बी.डी.एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए 15 प्रतिशत अखिल भारतीय कोटे का आबंटन – श्रवण कुमार बनाम महानिदेशक, स्वास्थ्य सेवा वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रवेश के लिए विरचित स्कीम में केवल दो चरणों में परामर्श (काउंसिलिंग) का उपबंध किया गया है और तीसरे चरण का कोई उपबंध नहीं है तो किसी विशिष्ट वर्ष में दो चरणों के परामर्श (काउंसिलिंग) के पश्चात् स्थान रिक्त होने पर तीसरे चरण की काउंसिलिंग के लिए सुविधानुसार स्कीम परिवर्तित करना उचित नहीं है क्योंकि स्थान रिक्त होने की प्रक्रिया अंतहीन है ।

उच्चतम न्यायालय द्वारा श्रवण कुमार वाले पूर्ववर्ती मामले में देश के विभिन्न आयुर्विज्ञान महाविद्यालयों में एम.बी.बी.एस./बी.डी.एस. पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए 15 प्रतिशत अखिल भारतीय कोटे के आबंटन की प्रक्रिया अनुध्यात करते हुए विरचित स्कीम से व्युत्पन्न इन रिट याचिकाओं में यह निवेदन किया गया कि यदि ऐसे अभ्यर्थी, जिन्हें प्रथम चरण की परामर्श (काउंसिलिंग) में उनकी इच्छानुसार पाठ्यक्रम या महाविद्यालय या स्थान आबंटित नहीं होते हैं, किन्तु बाद में राज्य कोटे से उन्हें इच्छानुसार पाठ्यक्रम या महाविद्यालय या स्थान आबंटित हो जाते हैं, अखिल भारतीय कोटे के स्थान छोड़ देंगे, परिणामस्वरूप ये स्थान खाली हो जाएंगे । ऐसी दशा में ये स्थान तीसरे चरण की परामर्श करके (काउंसिलिंग) अखिल भारतीय कोटे के सफल और योग्यता प्राप्त अभ्यर्थियों को आबंटित करना उचित होगा । उच्चतम न्यायालय द्वारा तदनुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – जब इस न्यायालय के आदेशों द्वारा एक व्यापक स्कीम विरचित कर दी गई है और इसमें वह रीति भी उपदर्शित कर दी गई है जिसके आधार पर इसे कार्यान्वित किया जाना होगा तो न्यायालय ऐसा नहीं समझता कि किसी विशिष्ट वर्ष में यदि कोई कमी रह जाती है या कतिपय स्थान खाली रह जाते हैं तो उन्हें परामर्श (काउंसिलिंग) का एक और चरण पूरा करके भरा जाना चाहिए क्योंकि स्कीम के अन्तर्गत परामर्श (काउंसिलिंग) के